श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

हिन्दी-भाषा में एकमात्र पारमार्थिक मासिक

वर्ष १३ | अग्रहायण, सम्वत् २०२४ | संख्या ७

ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

सम्पादक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज

कार्यालय—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, पो० (मथुरा) उ०प्र०

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका मुख-पत्र

'श्रीभागवत-पत्रिका'

के

संस्थापक और नियामक

परमहंस स्वामीॐविष्णुपाद १००८ श्री-श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराजजी

प्रचार-सम्पादक—

प्रधान—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराज

सहकारी—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज

सहकारी सम्पादक-संघः—

१. त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज (संघपति)
२. त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज
३. विद्यावाचस्पति श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, नव्य व्याकरण, पुराण-इतिहास-धर्मशास्त्र सांख्य-आचार्य, काव्यतीर्थ, एम. ए., साहित्यरत्न
४. पण्डित श्रीयुत शर्मनलाल अग्रवाल एम. ए.; एल-एल. बी.
५. पण्डित श्रीयुत केदारदत्त तत्राडी, एम. ए. साहित्यरत्न, साहित्यालङ्कार
६. पण्डित बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ
७. पण्डित केशवदेव शर्मा, साहित्यशास्त्री, वेदान्ताचार्य, एम. ए. पी-एच. डी.
८. पण्डित श्रीयुत शङ्करलाल चतुर्वेदी एम. ए.; साहित्यरत्न
९. पण्डित श्रीयुत अच्युत गोविन्द दासाधिकारी 'साहित्यरत्न'
१०. पण्डित श्रीयुत श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी
११. पण्डित श्रीयुत सत्यपाल दासाधिकारी एम. ए.

कार्याध्यक्ष

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त मुनि महाराज

{ वार्षिक भिक्षा ५)

पण्डित श्रीयुत कुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी 'सेवा-कोविद' कर्तृक श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, कंसटीला, पो० मथुरा, (मथुरा) से प्रकाशित तथा हेमेन्द्रकुमार, बी० एस० सी०, एल-एल० बी०, कर्तृक

साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा में मुद्रित ।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका मुख-पत्र

श्रीभागवत-पत्रिका

(पारमार्थिक मासिक)

वर्ष १३

[श्रीगौराब्द ४८१ त्रिविक्रम से—४८२ मधुसूदन
सम्वत् २०२४ ज्येष्ठ— २०२५ वैशाख,
सन् १९६७ जून— १९६८ मई ।]

संस्थापक तथा नियामक—

परमहंस स्वामी ॐविष्णुपाद १००८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराज

सम्पादक—

त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज

प्रकाशक—

श्रीकुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी 'सेवा-कोविद्'

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, पो० मथुरा (मथुरा)

वार्षिक भिक्षा ५) मात्र

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका मुख-पत्र

'श्रीभागवत-पत्रिका'

के

संस्थापक और नियामक

परमहंस स्वामीॐविष्णुपाद १००८ श्री-श्रीमद्‌भक्तिप्रज्ञान केशव महाराजजी

प्रचार-सम्पादक--

प्रधान—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्‌भक्ति वेदान्त वामन महाराज

सहकारी—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्‌भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज

सहकारी सम्पादक-संघः—

१. त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्‌भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज (संघपति)
२. त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्‌भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज
३. विद्यावाचस्पति श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, नव्य व्याकरण, पुराण-इतिहास-धर्मशास्त्र सांख्य-आचार्य, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न एम. ए., पी. एच. डी.
४. पण्डित श्रीयुत शर्मनलाल अग्रवाल एम. ए.; एल-एल. बी.
५. पण्डित श्रीयुत केदारदत्त तत्राडो, साहित्यरत्न, साहित्यालङ्कार एम. ए. पी. एच. डी.
६. पण्डित बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ
७. पण्डित केशवदेव शर्मा, साहित्यशास्त्री, वेदान्ताचार्य, एम. ए. पी-एच. डी.
८. पण्डित श्रीयुत शङ्करलाल चतुर्वेदी एम. ए.; साहित्यरत्न
९. पण्डित श्रीयुत अच्युत गोविन्द दासाधिकारी 'साहित्यरत्न'
१०. पण्डित श्रीयुत श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी
११. पण्डित श्रीयुत सत्यपाल दासाधिकारी एम. ए.

कार्याध्यक्ष

{ वार्षिक भिक्षा ५)

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्‌भक्तिवेदान्त मुनि महाराज

पण्डित श्रीयुत कुंजविहारी ब्रह्मचारी 'सेवा-कोविद' कर्त्तृक श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, कंसटीला, पो० मथुरा, (मथुरा)
से प्रकाशित तथा हेमेन्द्रकुमार, बी० एस० सी०, एल-एल० बी०, कर्त्तृक
साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा में मुद्रित ।

श्रीभागवत-पत्रिकाके तेरहवें वर्षकी

विषय-सूची

विषय		संख्या।पृष्ठ
(१) श्रीव्रजविलास-स्तवः		१।१, २।२५
(२) जब जिधर हवाका रुख हो		१।६
(३) प्रश्नोत्तर	[विद्ध-वैष्णव–१।१०, गृहस्थ वैष्णव–२।३१, परमहंस स्वरूप–३-४।५७, विज्ञान ५-६।१००, दर्शन–७।१३७, ऐतिह्य ८।१६२, ९।१८५, श्रुति-प्रस्थान १०-११।२०९, स्मृति-प्रस्थान १२।२४८]	
(४) सन्दर्भ-सार	[कृष्ण-सन्दर्भ—(१६) १।११, (१७) २।३४, (१८) ३-४।६१, (१९) ५-६।१०२, (२०) ७।१४१, (२१) ८।१६४, (२२) ९।१८९, (२३) १०-११।२१३, (२४) १२।२५० ।	
(५) श्रीचैतन्य-शिक्षामृत		**१।१६, २।४४, ५-६।११४, ९।१९४, १०-११।२२३, १२।२५५**
(६) श्रीनवद्वीपधाम-परिक्रमा और श्रीगौरजन्मोत्सव		१।२१
(७) प्रचार-प्रसङ्ग		१।२३, ३-४।८३, ५-६।१२७, ९।१९८, १२।२६२
(८) जैवधर्म (सूचना)		१।२४, ३-४।८८, ८।१६८, १०-११।२३९
(९) श्रीधर स्वामीपाद और मायावाद		२।२८
(१०) श्रीमद्भागवतमें माधुर्यभाव		२।३९, ३-४।६५, ७।१४५, ८।१६९, १०-११।२१६,
(११) श्रीकृष्ण (कविता)		२।४३, ३-४।६९, ८।१७२
(१२) श्रीमद्भागवतमें पात्रोंकी अनुक्रमणिका		२।४७, ३-४।७९
(१३) श्रीहिन्दोलन-लीला-वर्णनम् (पूर्वार्द्धम्)		३-४।४९
(१४) श्रीरूपानुग भजन-पथ		३-४।५४
(१५) श्रीकृष्णाविर्भाव		३-४।७२, ५-६।१०८
(१६) श्रीझूलन यात्रा		३-४।८५
(१७) नम्र-निवेदन		३-४।८७
(१८) श्रीहिन्दोलनलीला-वर्णनम् (उत्तरार्द्धम)		५-६।८९
(१९) श्रेयः और प्रेयः		५-६।९५

विषय	संख्या पृष्ठ
(२०) सम्राट कुलशेखरकी प्रार्थना	५-६।१०५, ७।१४८
(२१) श्रीनन्दनन्दनकी शोभा	५-६।११३
(२२) भक्तोंद्वारा मुक्तिका अनादर	५-६।१२१
(२३) विरह-संवाद { त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति विज्ञान आश्रम महाराज; ,, ,, कुशल नारसिंह महाराज; ,, ,, सर्वस्व गिरि महाराज }	५-६।१२२
(२४) प्रार्थना	५-६।१२४
(२५) श्रीदामोदर-व्रत और श्रीअन्नकूट महोत्सव	५-६।१२५
(२६) श्रीश्रीव्रजनवीनयुवद्वन्द्वाष्टकम्	७।१२६
(२७) अन्याभिलाष	७।१३३
(२८) समितिके छात्रकी सफलता	७।१५२
(२९) श्रीश्रीव्रजनवयुवराजाष्टकम्	८।१५३
(३०) नर-जीवनका कर्तव्य (कविता)	८।१५६
(३१) श्रीकृष्णाविर्भाव	८।१५७
(३२) यदाहन्तैर्मिलितः	८।१७४
(३३) श्रीव्यासपूजाका निमंत्रण-पत्र	८।१७६
(३४) श्रीकार्पण्यपञ्जिकास्तोत्रम्	९।१७८, १०-११।२०२, १२।२४१
(३५) गौड़ीय भजन-प्रणाली	९।१८१
(३६) पुष्पांजलि	९।१९३
(३७) श्रीश्रीनवद्वीपधाम-परिक्रमा और श्रीश्रीगौर-जन्मोत्सव (निमंत्रण-पत्र)	९।१९८
(३८) श्रीमद्भागवत	१०-११।२०५
(३९) श्रीमद्भागवतका स्वरूप	१०-११।२२९
(४०) श्रीमद्भक्ति विनोद-संगस्मृति	१०-११।२३१
(४१) श्रीश्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमा और श्रीगौरजन्मोत्सव (विवरण)	१०-११।२३७
(४२) श्रीमद्भागवत-पत्रिकाके सम्बन्धमें विवरण	१०-११।२३९
(४३) अनर्थ युक्त व्यक्तिका स्वप्नदर्शन और यथार्थ भजन	१२।२४५
(४४) वर्ष-शेष	१२।२६३

• श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः •

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल वंचनकर।

वर्ष १३ { गौराब्द ४८१, मास— त्रिविक्रम २३, वार—कारणोदशायी
बृहस्पतिवार, ३१ जेठ, सम्वत् २०२४, १५ जून, १९६७ } संख्या १

श्रीश्रीव्रजविलास-स्तवः

[श्रीरघुनाथदास-गोस्वामि-पाद-प्रणीता]

(गतांकसे आगे)

हेषाभिर्जगतीत्रयं मदभरैः कम्पयन्तं परैः
फुल्लन्नेत्रविघूर्णनेन परितः पूर्णां दहन्तं जगत्।
तं तावत्तृणवद्विदीर्य वरभिद्विद्वेषिणं केशिनं
यत्र क्षालितवान् करौ सरुधिरौ तत् केशितीर्थं भजे॥८५॥

अपनी हिन-हिनाहटके घोर शब्दसे तीनोंलोकोंको कँपाते हुए तथा क्रोधसे अपनी लाल-लाल आँखोंसे मानो पृथ्वीको दग्ध करते हुए कंसद्वारा प्रेरित अश्वरूपधारी विद्वेषी केशी नामक असुरको श्रीकृष्णने तृणके समान अनायास ही विदीर्ण कर उसके खूनसे सने हुए अपने दोनों हाथोंको जिस स्थान पर यमुनामें धोया था, उस केशीतीर्थ या केशी घाटका मैं भजन करता हूँ॥८५॥

अन्नं यत्र चतुर्विधं: पृथुगुणं: स्वरं सुधानिन्दिभि:
कामं रामसमेतमच्युतमहो स्निग्धैर्वयस्यैर्वृतम् ।
श्रीमान् याज्ञिकविज्ञ-पुङ्गवधूवर्गैः स्वयं यो मुदा
भक्त्या भोजितवान् स्थलं च तदिदं तच्चापि बन्दामहे ॥८६॥

सुविज्ञ याज्ञिक ब्राह्मणोंकी परमा सुन्दरी पत्नियोंने सखा-मण्डलीसे परिवेष्टित और बलरामके साथ स्वच्छन्द रूपमें विहार करनेवाले श्रीकृष्णको जिस स्थान पर अमृत से भी अधिक सुस्वादु और विभिन्न प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न अन्नका भोजन कराया था, मैं उस भोजन-स्थली एवं उन याज्ञिक पत्नियोंकी बन्दना करता हूँ ॥८६॥

मुदा गोपेन्द्रस्यात्मज-भुजपरिष्वङ्ग-निधये
स्फुरद्गोपीवृन्दैर्यमिह भगवन्तं प्रणयिभि: ।
भजद्भिस्तैर्भक्त्या स्वमभिलषितं प्राप्तमचिराद्-
यमीतीरे गोपीश्वरमनुदिनं तं किल भजे ॥८७॥

व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरकी भुजाओंके आलिङ्गनरूप रत्नकी प्राप्तिके लिये कृष्ण के प्रति प्रणय रखनेवाली गोपियोंने भक्तिपूर्वक जिन सदाशिवका भजन करके अत्यन्त शीघ्र ही अपनी मनोकामनाको प्राप्त कर लिया था, यमुनाके तीरपर विराजमान उन गोपीश्वर महादेवका मैं प्रतिदिन भजन करता हूँ ॥८७॥

भयात् कंसस्यारात् सदयमचिराच्छन्नतनुपदे
विनिक्षिप्ता राधा रहसि किल पित्रा प्रकृतित: ।
स्फुरन्तं तं दृष्ट्वा कमपि घनपुञ्जाकृतिवरं
तमेवाप्तुं यत्नाद्यमभजत सूर्योऽवतु स नः ॥८८॥

कंसके भयसे पिता गोपराज वृषभानुने सदय होकर वात्सल्यभाव हेतु कल्याणको कामनासे ओतप्रोत होकर जिनको गुप्त स्थानमें रखा था, उन श्रीमती राधिकाने नैसर्गिक सौन्दर्यकी घनराशि—श्रीकृष्ण-प्राप्तिकी कामनासे अतिशय यत्नपूर्वक जिनका पूजन किया था, वे सूर्यदेव कृष्ण-प्राप्तिके विषयमें विघ्नकारियोंसे हमारी रक्षा करें ॥८८॥

आविर्भाव-महोत्सवे मुररिपो: स्वर्णोरुमुक्ताफल-
श्रेणीविभ्रममण्डिते नवगवी-लक्षे ददौ द्वे मुदा ।

दिव्यालङ्कृतिरत्न-पर्वत-तिल-प्रस्यादिकञ्चादरा-
द्विप्रेभ्यः किल यत्र स व्रजपतिर्वन्दे बृहत्काननम् ॥८९॥

व्रजराज श्रीनन्दने पुत्र श्रीकृष्णके जन्म-महोत्सवके अवसर पर आनन्दमें भर कर जिस स्थान पर सुवर्ण-मुक्ताओंकी मालाओंसे अलंकृत दो लाख नवीना गौवों, दिव्य अलंकारोंके पर्वत तथा तिलकी विराट-विराट राशियोंका दान ब्राह्मणोंको बड़े आदर के साथ दिया था, उस महावनकी हम बन्दना करते हैं ॥८९॥

गान्धर्वाया जनिमणिरभूद्यत्र सङ्कीर्त्तिताया-
मानन्दोत्कैः सुरमुनिनरैः कीर्त्तिदागर्भखन्याम् ।
गोपीगोपैः सुरभिनिकरैः संपरीतेऽत्र मुख्ये-
रावत्याख्ये वृषरविपुरे प्रीति-पूरो ममास्ताम् ॥९०॥

गोप, गोपी और गौवोंसे परिपूर्ण, वृषभानु महाराजके उस रावल नामक पुरीमें मेरी परम प्रीति हो, जहाँ सुरनर-मुनि बन्दित श्रीमती कीर्तिदाकी गर्भरूप खानसे श्रीराधिका रूपी मणिका जन्म हुआ है ॥९०॥

यस्य श्रीमच्चरण-कमले कोमले कोमलापि
श्रीराधोच्चैर्निजसुखकृते सन्नयन्ती कुचाग्रे ।
भीताऽप्याराद्‌थ न हि दधात्यस्य कार्कश्य-दोषात्
स श्रीगोष्ठे प्रथयतु सदा शेषशायी स्थितिं नः ॥९१॥

कोमलाङ्गी श्रीराधिकाजी अपने सुखके लिये अपने उन्नत वक्षःस्थल पर जिनके सुकोमल चरण-कमलोंको धारण करके भी पुनः 'मेरे वक्षःस्थल अत्यन्त कठोर हैं' (कहीं इन कठोर कुचोंपर धारण करनेसे श्रीकृष्णके सुकोमल चरण-कमलोंको कष्ट न हो) ऐसा सोच कर भयभीत होकर उन्हें धारण नहीं करना चाहतीं—उन्हें वहाँसे हटा देने की अभिलाषा करती हैं, वे शेषशायी श्रीकृष्ण श्रीगोष्ठ—वृन्दावनमें हमारा नित्य वास प्रदान करें ॥९१॥

यत्र कामसरः साक्षाद्गोपिकारमणं सरः ।
राधामाधवयोः प्रेष्ठं तद्वनं काम्यकं भजे ॥९२॥

जहाँ गोपियोंके साथ कृष्णके रमण अर्थात् विलास करनेके लिये काम सरोवर विराजमान हैं, उन राधा-माधवके प्रियतम काम्यवनका मैं भजन करता हूँ ॥६२॥

मल्लीकृत्य निजाः सखीः प्रियतमा गर्वेण संभाविता
मल्लीभूय मदीश्वरी रसमयी मल्लत्वमुत्कण्ठया ।
यस्मिन् सम्यगुपेयुषा बकभिदा राधा नियुद्धं मुदा
कुर्वाणा मदनस्य तोषमतनोद्भाण्डीरकं तं भजे ॥६३॥

मैं उस भाण्डीर वनका भजन करता हूँ, जिस स्थान पर मेरी रसमयी ईश्वरी—श्रीराधिकाने अपनी प्रियतमा सखियोंको मल्ली (स्त्री-योद्धा) बना कर स्वयं भी बड़े गर्वके साथ मल्ली बन कर श्रीकृष्णके साथ मल्ल-युद्ध करके मदनराजको सन्तुष्ट किया था ॥६३॥

आकृष्टा या कुपित-हलिना लाङ्गलाग्रेण कृष्णा
धीरा यान्ती लवण-जलधौ कृष्ण सम्बन्धहीना ।
अद्यापीत्थं सकलमनुजैर्दृश्यते सैव यस्मिन्
भक्त्या वन्देऽद्भुतमिदमहो रामघट्टप्रदेशम् ॥६४॥

जिस स्थान पर यमुना कुपित बलदेवके द्वारा हलकी नोंकसे खींची गयी थीं, कृष्ण-सम्बन्धसे रहित होकर यमुना जिस घाटसे अति मन्द गतिसे लवण समुद्रकी ओर गमन करती हैं, उस घाट पर आज भी लोग हल द्वारा यमुनाके खींचे जानेका चिह्न (उलटी दिशामें बहना) देखते हैं, मैं यमुनाके उस रामघाटकी भक्ति पूर्वक वन्दना करता हूँ ॥६४॥

प्राणप्रेष्ठ-वयस्यवर्गमुदरे पापीयसोऽघासुर-
स्यारण्योद्भटपावकोत्कट-विषदुष्टे प्रविष्टं पुरः ।
व्यग्रः प्रेक्ष्य रुषा प्रविश्य सहसा हत्वा खलं तं बली
यत्रैनं निजमाररक्ष मुरजित् सा पातु सर्पस्थली ।६५॥

पापीष्ठ अघासुरके, सम्पूर्ण वनमें परिव्याप्त प्रचण्ड दावाग्निकी भाँति उत्कट, विषसे व्याप्त उदरमें अपने प्राणाधिक प्रिय सखाओंको प्रवेश करते देखकर अत्यन्त

व्याकुल मुरारिने स्वयं भी उसमें प्रवेश किया और क्षणभरमें उस दुष्टको मार कर अपने सखाओंकी जिस स्थान पर रक्षा की थी, वह सर्प-स्थली हमारी भी कृष्ण-सखाओंकी भाँति रक्षा करें ।।९५।।

द्रष्टुं साक्षात् स्वपति-महिमोद्रेकमुत्केन धात्रा
वत्सव्राते द्रुतमपहृते वत्सपालोत्करे च ।
तत्तद्रूपो हरिरथ भवन यत्र तत्तत्प्रसूनां
मोदं चक्रेऽशनमपि भजे वत्सहारस्थलीं ताम् ।।९६।।

अपने पति श्रीकृष्णकी विशेष महिमा-दर्शनकी लालसासे ब्रह्माजीने उत्सुक होकर जिस स्थान पर बछड़ों और उनके रक्षक ग्वालबालोंका अपहरण किया था; तदनन्तर श्रीकृष्णने जहाँ पर उन-उन ग्वाल-बालोंका रूप धारण कर उन-उन ग्वाल-बालोंकी माताओंका हर्ष बढ़ाते हुए उनके द्वारा प्रदत्त भोज्य पदार्थोंको बड़े प्रेमसे खाया था, उस वत्सहार-स्थलीका मैं भजन करता हूँ ।।९६।।

बाढं बत्सक वत्सपाल हृतितोजातापराधद्भयं
ब्रह्मा सास्रमपूर्वपद्य निवहै र्यस्मिन्निपत्यस्तवनो ।
तुष्टावाद्भुत वत्सपं व्रजपतेः पुत्रं मुकुन्दं मनाक्
स्मेरं भीरु चतुर्मुखाख्यमनिशं सेश प्रदेशं नुमः ।।९७।।

ग्वाल-बालों और बछड़ोंको चुरानेके अपराधके कारण रोते-रोते भूमि पर गिर कर ब्रह्माने जिस स्थान पर मुसकुराते हुए वत्सपालक श्रीव्रजेन्द्रनन्दन मुकुन्दका अपूर्व पद्योंसे स्तव किया था, उस शेष अर्थात् श्रीकृष्णके साथ भीरु चतुर्मुख नामक स्थानको हम निरन्तर नमस्कार करते हैं ।।९७।।

(क्रमशः)

जब जिधर हवाका रुख हो

जब जिधर हवाका रुख हो, उधर ही चलनेसे सहज ही उस तरफ चला जा सकता है। तात्पर्य यह कि संसारके लोग जो चाहते हैं, उसी प्रकारके कार्य करनेसे संसारमें लोकप्रिय हुआ जा सकता है। परन्तु कभी-कभी ऐसे-ऐसे कार्योंके द्वारा लोकप्रियता अर्जनके बदले अपयश और कुफल ही हाथ लगते हैं।

एक राजा थे। उनके साथ बहुतसे खुशामदी व्यक्ति रहते थे। वे खुशामदी लोग राजाको प्रत्येक बातमें हाँ जी, हाँ जी, मिला कर राजासे अपना उल्लू सीधा किया करते थे। इन खुशामदकारियोंमें राजाके कुलगुरु, कुल पुरोहित, राजवैद्य, प्रिय बन्धुवर्ग और कुछ नौकर-चाकर थे। इनमेंसे प्रत्येक व्यक्ति किसी भी प्रकारसे अपना अपनत्व खोकर भी उचित-अनुचित बातों और क्रियाओं द्वारा औरोंसे अधिक खुशामद कर राजाका सर्वाधिक प्रियपात्र बनना चाहता था। इस प्रकार राजाके उन खुशामदकारियोंमें परस्पर प्रतिद्वन्द्वता लगी रहती—सभी एक दूसरेसे इस विषयमें बढ़ जाना चाहता।

एक दिन बातों-बातमें राजाने कहा—'बैंगन खानेसे मुख-काटता है।' राजाकी बात सुनकर एक खुशामदीने कहा—'महाराज ! बैंगन, बैंगन क्या कोई खानेकी चीज है, यह अत्यन्त अखाद्य पदार्थ है, यह सूरनसे भी अधिक मुख काटता है। अतः यह बैंगन या वेगुन (बिना गुणका) कहा जाता है।' खुशामदीकी बात सुनकर राजा बड़े प्रसन्न हुए। फिर भी उन्होंने मन-ही-मन सोचा कि इस व्यक्तिकी बात ठीक नहीं है। इसलिये क्षणभरके बाद ही राजाने कहा—'परन्तु बैंगन खानेमें स्वदिष्ट होता है, खानेके समय उसे चबाना नहीं पड़ता और सभी प्रकारकी सब्जियोंमें मिल जाता है तथा उसका स्वाद बढ़ा देता है।' राजाकी ऐसी बात सुनकर उसी खुशामदीने राजाके स्वर-में-स्वर मिलाते हुए कहा—'राजन ! बैंगन, वास्तवमें एक सुखाद्य सब्जी है, इसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। इससे भी राजा बड़े सन्तुष्ट हुए।

और किसी दिन एक व्यक्तिने राजाको कुछ अच्छे केले भेंट किये। राजाने अपने खुशामदकारियोंको सुनाते हुए कहा—'केला खानेसे सर्दी और जुखाम होता है।'

राजाकी बात समाप्त होने-न-होते ही एक खुशामदकारने झट कहा—'केला कोई अच्छी चीज थोड़े है। न जाने लोग उसे कैसे खाते हैं? उसमें कोई स्वाद नहीं, अधिकन्तु उससे नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। राजाने उसी समय फिर कहा—'तब एक बात है, केला खानेमें कुछ बुरा तो नहीं लगता।' खुशामदकारने झट पैंतरा बदलते हुए कहा—'वास्तवमें केलेके समान कोई भी उत्तम फल नहीं है। खासकर सबरी-केले अत्यन्त सुस्वादु और पुष्टिकारक होते हैं।'

आज खुशामदकारीकी ऐसी दो-रंगी बात सुन कर राजाने उससे पूछा—मैं देखता हूँ कि मैं जो

कोई भी बात कहता हूँ, तुम लोग मेरी सभी बातों का अनुमोदन करते हो, भला हो या बुरा—इसका विचार न करके—उचित - अनुचितकी विवेचना किये बिना ही मेरे स्वरमें मिलाकर हाँ जी, हाँ जी करके मुझे खुश करना चाहते हो। मैं तुम्हारी हाँ जी, हाँ जी से तात्कालिक सन्तुष्ट तो होता हूँ; परन्तु उससे मेरा यथार्थमें हित नहीं होता।'

खुशामदकारने उत्तर दिया—'हुजूर! मैं बैंगन का भी नौकर नहीं, मैं केलेका भी नौकर नहीं हूँ; मैं तो हुजूरका नौकर हूँ। मैं तो नौकरका धर्म पालन करता हूँ। आपके मनके अनुकूल न बोलूँ तो आप मुझे नौकरी पर ही नहीं रखेंगे। अतएव पेटके लिए आपका प्रियपात्र बननेके लिये आपको आवश्यक नहीं होने पर भी मेरे लिये वैसा व्यवहार आवश्यक है।'

खुशामदकारकी बात सुन कर राजाके दूसरे कर्मचारी भी उसी नीतिका पालन करने लगे। कुलगुरुने राजाको सन्तुष्ट करनेके लिये राजा जिस देवताकी उपासना करना चाहते थे, उसी देवताका उन्हें मन्त्र दिया। कुल पुरोहित राजाका प्रियपात्र बननेके लिये शास्त्रीय विधियोंको छोड़कर भी राजा के मनोनुकूल अनुष्ठान करते। भृतक पाठक (पैसा लेकर भागवतका पाठ करनेवाले) राजासे अर्थके लोभसे अनाधिकारी राजसभामें राजाकी इच्छानुसार चीर-हरण, मानभंग और रासलीलाका पाठ करते। इस प्रकार सभी लोग राजाके प्रियपात्र तो हुए, किन्तु उन अनुष्ठानोंका परिणाम बड़ा ही अनिष्टकर हुआ।

विद्यासागरने बच्चोंके लिए 'वर्ण-परिचय' नामक एक पुस्तक लिखी है। उसमें 'मौसीका कान काट खाया' शीर्षक नामक एक गल्प है। एक लड़का अपनी मौसीके पास रहकर वहींकी पाठशाला में पढ़ता था। एक दिन वह अपने सहपाठीकी कलम चुरा लाया। मौसीने यह जान कर भी डाँटना-फटकारना तो दूर रहे, उसे मना तक नहीं किया। धीरे-धीरे बालककी चोरीकी प्रवृति बढ़ती गयी। अब वह दूसरे लड़कोंकी किताबें चुरा कर बेच देता, उनके पैसे चुरा लाता और उसमेंसे मौसी को भी देता। मौसीको चोरीका माल और पैसे मिलनेसे वह बड़ी खुश होती और उस लड़केके प्रति स्नेह दिखलाती। दिन बीतते गए। लड़का क्रमशः युवावस्थामें पहुँच गया। लिखना पढ़ना छोड़ दिया और कुसंगमें फँस गया। अब उसने डैकती भी करना आरम्भ कर दिया।

एक बार उसने और डकैतोंके साथ एक सम्पन्न व्यक्तिके घर पर डाँका डाला। उस डकैतीमें एक व्यक्ति मारा गया। वह लड़का भी पकड़ा गया और उसे फाँसीकी सजा मिली। जिस दिन फाँसी होनी थी, उस दिन लड़केकी इच्छानुसार उसकी मौसीको उससे भेंट करवा दी गयी। लड़केने मौसी के कानमें कुछ कहनेके बहानेसे उसका कान अपने दाँतोंसे काट लिया। इसका कारण पूछने पर उसने यह बतलाया कि जिस पहले दिन मैंने एक छोटी सी चीज चुरायी थी, उसी दिन यदि इसने मुझे रोका होता तथा मुझे चोरी कार्यमें प्रोत्साहन नहीं दिया होता तो आज यह दशा उपस्थित नहीं होती। इस प्रकार लोकरुचिके अनुकूल कार्य करने का फल विषमय हो पड़ा।

यदि कोई चिकित्सक रोगीका प्रियपात्र बननेकी अभिलाषा करता है, तो वह रोगीको इच्छानुसार कुपथ्यकी व्यवस्था करेगा। यदि कोई उपदेशक श्रोतृमण्डलीकी वाह-वाही लूटने की इच्छासे उनकी रुचिके अनुसार ही उपदेश करे, यदि अर्थके विनिमयमें भागवतका पाठ करनेवाला अर्थके लोभसे धर्मके नाम पर लम्पट व्यक्तियोंकी रुचिके अनुसार शास्त्रोंकी व्याख्या करे, तो उनका फल विषमय होगा ही। आजकल अर्थके विनिमय पर भागवतका पाठ करके तथा धर्मके विषयमें भाषण करके अपना और दूसरोंका अहित करते हैं। ऐसे अर्थ-लोलुप पाठक सत्यका गला घोंट कर अपनी कामनाओंका संग्रह मात्र करनेकी चेष्टामें तत्पर रहते है। अपने दग्ध उदरकी पूर्तिके लिये, पैसेके लोभसे भागवत पाठ या हरिनाम-कीर्तन द्वारा वैसे पाठकों या कीर्तनकारियोंकी अभीष्ट-सिद्धि तो हो सकती है, परन्तु उससे विकृतभावापन्न श्रोताओंका भयंकर अपकार होता है। एक छोटा बच्चा जैसे आगके साथ खेलनेका कुफल नहीं जानता, जैसे नवयुवक दुराचारके विषमय फलको अग्राह्य कर उसी ओर अग्रसर होता है, जिस प्रकार बूढ़ा व्यक्ति अपने भविष्य जीवनको सुखमय बनानेकी चेष्टासे उदासीन होकर पुनः पुनः चर्वित चर्वणरूप विषय-भोगोंकी चिन्तारूप चितामें जलता रहता है, और जिस प्रकार कोई मूर्ख अपने अज्ञानको ही ज्ञान मान कर वैसी ही जनताका प्रियपात्र बननेकी चेष्टा करता है तथा अन्तमें उसका विषमय फल भोग करनेको बाध्य होता है, उसी प्रकार कनक, कामिनी और प्रतिष्ठा-लोलुप पाठक, वक्ता, उपदेशक और चिकित्सकगण भी अपनी-अपनी चेष्टाओं द्वारा ही अपना और यजमान दोनोंका अहित करते हैं।

प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी आशा बड़ी बुरी होती है। वह सब प्रकारके कल्याणके पथमें बाधक है। गणपतिकी उपासनासे जीव बहुतसे प्रशंसकोंको प्राप्त करता है। यह सत्त्व और तमोगुणके समिश्रण से उत्पन्न होती है। श्रीनारायणके उपासकगण विशुद्ध सत्त्वके उपासक होते हैं। ये लोग जीवोंके प्रति दयाभावसे ओतप्रोत होकर संसारमें डूबे हुए जीवोंको उद्धार करते हैं। ये लोग बद्धजीवोंकी कुरुचिका समर्थन करने तथा उनके मनोनुकूल उपदेश देनेके बदले उनका यथार्थ कल्याणके लिये शास्त्रोंकी यथार्थ वाणीका ही उपदेश करते हैं। इसीलिये कविराज गोस्वामीने कहा है—

चैतन्यचन्द्रेर दया करह विचार।
विचार करिले चित्ते पावे चमत्कार॥
भारत-भूमिते हइल मनुष्य जन्म यार।
जन्म सार्थक करि कर पर उपकार॥

यदि हम स्वर्थापर होकर समाजका अहित करें, ऐसा करनेसे समाजमें हमारा आदर होगा—यह विचार ठीक नहीं। यह दयाका यथार्थ परिचय नहीं। किसी मनचले युवकको उसके कुकर्ममें सहायता करना, रोगीको कुपथ्य प्रदान करना और हरि विमुख समाजमें विषय-भोग-वृद्धि करनेका उपदेश देना—उन्हें ध्वंशके पथ पर अग्रसर कराना है। अतः उक्त कार्योंकी प्रेरणा देना सर्वथा अनुचित है। आपात् रमणीय किन्तु अन्तमें दुःखदायी भोगोंके संग्रहमें अंधे हुए भवरोगी, भागवत श्रोता

और शिष्याभिमानीजन अपनेको अपने चिकित्सकों, भृतक शाठकों तथा धर्म-वक्ताओंके दयाका पात्र मान कर अन्तमें वंचित हो पड़े, इस विषयमें क्या हमें दृष्टि रखना उचित नहीं है ? रोगी—चिकित्सा-प्रणालीकी भले ही निन्दा करे, विषयी एवं भोगी शिष्य-श्रोता अपने भोगोंमें विघ्नदाता जानकर भले ही भागवत-पाठकको या धर्म वक्ताको वरखास्त कर देगा, इस डरसे पाठक या वक्ताको श्रोताओंकी कुरुचिके अनुसार ही व्याख्या या वक्तृता देकर उनका अहित करना उचित नहीं। हवाकी रुखमें चलनेसे सब समय सुफल नहीं होता, कहीं गड्ढेमें भी गिरा जा सकता है।

श्रीमद्भागवतमें वास्तव सत्य या वास्तव ज्ञानकी ही बातें हैं। उसमें निर्मत्सर सन्तोंके धर्मका ही उपदेश है। विषय भोगी जीवोंके लिये वे उपदेश-समूह अच्छे नहीं लगते। परन्तु उन उपदेशोंके अतिरिक्त हमारा कल्याण नहीं हो सकता। शिक्षक शासनके द्वारा उदण्ड बालकोंका कल्याण करते हैं। उनका शासन स्वीकार करना छात्रोंके लिये क्लेश-कर होने पर भी शिक्षकको जानसे भार डालना उचित नहीं। चिरफाड़ करनेवाले सुचिकित्सकको मारना तथा सच्चे उपदेशकको निन्दा करना ठीक नहीं। जीव स्वभावतः अपनी बुद्धिके दुरुपयोगके द्वारा ही नाना प्रकारके दुःखोंसे जर्जरित हो रहा है, इस तथ्यको भूल कर हम अधिकांश समय महत् पुरुषोंके प्रति अपराध कर बैठते हैं साथ ही यदि हवाका रुख सत्यकी ओर रहे तो उस ओर चलनेसे वास्तवमें सुफल भी होता है। श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रकटावस्थाकी बात जिसे श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीने कहा है, हम उसे फिर दुहरा रहे हैं—

दन्ते निधाय तृणकं पदयोर्निपत्य
कृत्वा च काकुशतमेतदहं ब्रवीमि।
हे साधवः सकलमेव विहाय दूरात्
चैतन्यचन्द्रचरणे कुरुतानुरागम् ॥

क्योंकि गौरहरिके प्रकटकालमें उसी तरफ हवाका रुख था—

श्रीशुकादिकथां जहुर्विषयिनः शास्त्रप्रवादं बुधाः
योगीन्द्रा विजहुर्मरुन्नियमजं क्लेशं तपस्तापसाः।
ज्ञानाभ्यास-विधिं जहुश्च यतयश्चैतन्यचन्द्रे पर-
माविष्कुर्वति भक्तियोगपदवी नैवान्य आसीद्रसः॥

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वतीठाकुर

———

प्रश्नोत्तर

[विद्ध-वैष्णव]

(१) क्या नामापराधी शुद्ध वैष्णव नहीं हैं ?

उ०—'नामापराधी कदापि शुद्ध वैष्णव नहीं हैं; श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने इनको वैष्णव-प्राय कहा है, शुद्ध वैष्णव नहीं—'शुद्ध वैष्णव नहे, मात्र वैष्णवेर प्राय।'

—'नामके बल पर पापवृत्ति एक अपराध है।

(२) सात्त्विक विकारोंको बाहरमें देखे जानेपर भी यदि किसी व्यक्तिके अन्दर पाप प्रवृत्ति रहे तो क्या वह वैष्णव नहीं है ?

उ०—'जिनके अन्दरमें पाप-प्रवृत्ति है, वे शुद्ध वैष्णव नहीं कहे जा सकते। कृष्णनाम करने पर भी यदि हृदयमें पाप-प्रवृत्ति रहे तो ऐसा समझना चाहिए कि वे अनन्य श्रद्धासे हरिनाम ग्रहण नहीं करते। यदि ऐसे व्यक्ति अपने अङ्गोंमें अष्टसात्त्विक भावोंके लक्षण (बाह्य) दिखलावें, तो भी उनमें अनन्य नामाश्रय-प्रवृत्ति कदापि स्वीकृत नहीं हो सकती। जिस व्यक्तिमें सचमुच ही पाप-प्रवृत्ति रहती है, वे कृष्णनाम करते समय अङ्गोंमें पुलक, नेत्रोंसे अश्रुपात आदि दिखलाने पर भी कपट वैष्णवोंकी श्रेणीमें परिगणित होंगे, क्योंकि वे नामापराधी हैं।

(३) यदि मायावादीके शरीरमें सात्त्विक विकार दृष्टिगोचर हो तो क्या उसे वैष्णव माना जायगा ?

उ०—'मायावादी—प्रतिविम्ब नामाभासी हैं, अतएव वे अपराधी हैं। इनके लिए शुद्ध वैष्णव होना बड़ा ही कठिन है। वे सात्त्विक भावोंको अपने शरीर पर जितने भी अधिक रूपमें प्रदर्शन क्यों न करें, उनको वैष्णव नहीं कहा जा सकता।'

(४) यदि कोई पंचोपासक श्रीराधाकृष्णकी पूजा करे तो उसे शुद्ध वैष्णव कहा जा सकता है या नहीं ?

उ०—अशुद्ध (विद्ध) वैष्णवधर्म दो प्रकारके हैं—कर्मविद्ध वैष्णव धर्म और ज्ञानविद्ध वैष्णव धर्म। स्मार्त मतानुसार जो वैष्णव धर्मकी पद्धति है, वह कर्मविद्ध वैष्णधर्म है। उस वैष्णव धर्ममें वैष्णवमंत्र-दीक्षा विद्यमान रहने पर भी विश्व-व्यापी पुरुष विष्णुको कर्माङ्गके रूपमें ग्रहण किया जाता है। इस मतके अनुसार विष्णु दूसरे सारे देवताओंके नियामक होने पर भी वे स्वयं कर्मके अङ्ग और कर्मके अधीन माने जाते हैं। उसमें विष्णुकी इच्छाके अधीन कर्म नहीं होता, बल्कि कर्मकी इच्छाके अधीन ही विष्णु होते हैं। इस मतके अनुसार उपासना भजन और साधन—सब कुछ कर्मका अङ्ग होता है, क्योंकि उनके विचारसे कर्म ही सबसे श्रेष्ठ तत्त्व है, उससे ऊपर कोई दूसरा तत्त्व नहीं है। जड़ मीमांसकोंमें ऐसा वैष्णवधर्म प्राचीन कालसे ही चला आ रहा है। भारतमें उक्त

मतके बहुतसे व्यक्ति अपनेको वैष्णव मानते हैं तथा शुद्ध वैष्णवोंको "वैष्णव" स्वीकार नहीं करना चाहते। यह उनका दुर्भाग्य है।

× × ×

भारतमें ज्ञानविद्ध वैष्णव धर्म भी प्रचुरतासे पाया जाता है। ज्ञानी-सम्प्रदायके मतानुसार अज्ञेय ब्रह्मतत्त्व ही सर्वोच्च-तत्त्व है। इस मतमें—निर्विशेष ब्रह्मको प्राप्त करनेके लिये साकार सूर्य, गणेश शक्ति, शिव और विष्णुकी उपासना करना आवश्यक होता है। ज्ञानपूर्ण होनेपर साकार उपास्य दूर हो जाता है। अन्तमें निर्विशेष ब्रह्मताकी प्राप्ति होती है। ये लोग शुद्ध वैष्णवता और शुद्ध वैष्णवों का निरादर करते हैं। पंचोपासनाके अन्तर्गत विष्णु की जो उपासना होती है, उसमें दीक्षा-मंत्र, पूजा आदि सब कुछ विष्णु विषयक होने पर अथवा कभी-कभी राधा-कृष्ण विषयक होने पर भी वह शुद्ध वैष्णवधर्म नहीं है।

ऐसे विद्ध वैष्णवधर्मको अलग कर देने पर जो शुद्ध वैष्णव धर्मका उदय होता है, वही यथार्थ वैष्णवधर्म है। कलियुगके प्रभावसे अधिकांश लोग शुद्ध वैष्णव धर्मको समझनेमें असमर्थ होकर विद्ध-वैष्णव धर्मको ही वैष्णव-धर्म कहते हैं।'

—जैवधर्म चौथा अध्याय

(५) रामानन्दी गण क्या शुद्ध वैष्णव हैं?

उ०—किसी भी प्रकारसे मुक्तिकी कामनावाले शुद्ध वैष्णव नहीं कहे जा सकते। वास्तवमें रामोपासक होनेके नाते ही रामदासको (रामानन्दी सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त साधकोंको) वैष्णव प्राय कहना ही उचित है। किन्तु पहले लोग शुद्ध-वैष्णव को भलीभाँति परखनेमें असमर्थ होनेके कारण श्रीरामदास भी परम वैष्णवके रूपमें विख्यात थे।

—अ. प्र. भा. अ. १३।६२

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

सन्दर्भ-सार

[श्रीकृष्ण-सन्दर्भ-१६]

भगवद्धाम

पृथ्वी पर भगवान्के जो धामसमूह जिस रूपमें विराजमान हैं, वैकुण्ठमें भी वे धामसमूह ठीक उसी प्रकारसे स्थित हैं। स्कन्द पुराणमें कहा गया है—

या या भुवि वर्त्तन्ते पुर्य्यो भगवतः प्रियाः।
तास्तथा सन्ति वैकुण्ठे तत्तल्लीलार्थमादृताः॥

श्रीचैतन्यचरितामृतमें धामके सम्बन्धमें इस प्रकार कहा गया है—

प्रकृतिर परे परव्योम नामे धाम।
श्रीकृष्ण विग्रह यैछे विभुत्वादि गुणवान्॥
सर्वग अनन्त विभु वैकुण्ठादि धाम।
कृष्ण, कृष्ण-अवतारेर ताँहाइ विश्राम॥

ताहार उपरिभागे कृष्णलोक ख्याति ।
द्वारका, मथुरा गोकुल त्रिविधत्वे स्थिति ।।
सर्वोपरि श्रीगोकुल व्रजलोक धाम ।
श्रीगोकुल श्वेतद्वीप वृन्दावन नाम ।।
ब्रह्माण्डे प्रकाश तार कृष्णेर इच्छाय ।
एकई स्वरूप तार नाहि दुई काय ।।
चिन्तामणि भूमि, कल्पवृक्षमय वन ।
चर्मचक्षे देखे तारे प्रपञ्चेर सम ।।
प्रेम नेत्रे देखे तार स्वरूप प्रकाश ।
गोप-गोपी सङ्गे यथा कृष्णेर विलास ।।
(आदि ५ वाँ अ.)

अर्थात्—सप्त स्वर्ग और सप्त पाताल—इन चौदह लोकोंको एक ब्रह्माण्ड कहते हैं। ब्रह्माण्डके बाहरमें प्रकृतिके आठ अवरण होते हैं जो क्रमश: ब्रह्माण्डको घेरे हुए फैले हैं। यहाँ तक प्रकृतिका राज्य है। उससे ऊपर विरजा नदीके उस पारमें सिद्धलोक है जो हरि-द्वारा मारे गये दैत्योंकी सायुज्य मुक्तिका स्थान तथा ज्ञान मार्गमें सिद्ध हुए जीवोंको प्राप्त होनेवाला निर्विशेष धाम है! इसके ऊपरमें परव्योम या वैकुण्ठ लोक है। यहाँ पर विभिन्न भगवद्‌वतारोंके पृथक्-पृथक् वैकुण्ठ हैं। जिस प्रकार श्रीकृष्णका विग्रह विभु, सर्वग अनन्त आदि गुणोंसे मुक्त होता है, वैकुण्ठधाम भी उसी प्रकार विभु, सर्वग और अनन्त होते हैं। वैकुण्ठ धाम ही कृष्ण और कृष्णके अवतारोंका विश्राम स्थल है। वैकुण्ठके उपरिभागमें कृष्णलोक विराजमान हैं। कृष्णलोकमें भी तीन प्रकोष्ठ हैं—द्वारका, मथुरा और गोकुल। इनमें गोकुल ही सबसे ऊपर में स्थित हैं। गोकुलको श्वेतद्वीप, व्रज या वृन्दावन भी कहते हैं। श्रीकृष्णकी इच्छासे ब्रह्माण्डमें भी उनका प्रकाश विद्यमान है। फिर भी ब्रह्माण्डगत व्रजधाम और वैकुण्ठसे ऊपरमें स्थित व्रजधाम स्वरूपत: अभिन्न हैं, वे दो नहीं हैं। यह धाम प्राकृत चर्म चक्षुओंसे देखे जानेपर प्राकृत जगत्‌के समान दीखने पर भी वास्तवमें वह वैसा नहीं है। वहाँ की भूमि—चिन्तामणि और वृक्ष—कल्पवृक्ष हैं। यहाँकी गौवें कामधेनु और दूध अमृत है। यहाँ पर सब समय गोप-गोपियोंके साथ कृष्णका विलास होता रहता है। केवल प्रेम-नेत्रोंसे ही धामका यथार्थ स्वरूप दृष्टिगोचर होता है।

उक्त धामसे जब भगवदवतारगण संसारमें अवतरण करते हैं, उस समय धाम एवं पार्षद समूह उनके साथ ही वहाँ पर अवतीर्ण होते हैं। जिस प्रकार श्रीकृष्ण एक ही समय अनेकों रूपोंमें प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार धाम भी एक ही समयमें अनेक रूप धारण करते हैं। परन्तु धाम सर्वव्यापक होनेके कारण उनको किसी एक स्थानसे अन्यत्र आने-जाने की आवश्यकता नही होती।

श्रीकृष्ण, जैसे सर्वश्रेष्ठतम स्वरूप हैं, वैसे ही उनका धाम भी सर्वोपरि विराजमान हैं। वही धाम अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे पृथ्वीपर भी विराजमान हैं। पृथ्वी पर विराजमान वृन्दावन और परव्योमके वृन्दावनमें भेद नहीं है। एक ही वृन्दावन की दोनों स्थानोंमें स्थिति है। स्वायंभुवागमके

ईश्वर और देवी संवादके ८५ वें पटलमें इस प्रकार कहा गया है—

ध्यायेत्तत्र विशुद्धात्मा इदं सर्वं क्रमेण तु ।
नानाकल्पलताकीर्णं वैकुण्ठं व्यापकं स्मरेत् ॥
अधः साम्यं गुणानांच प्रकृतिं सर्वकारणम् ।
प्रकृतेः कारणान्येव गुणांश्च क्रमशः पृथक् ॥
ततस्तु ब्रह्मणो लोकं ब्रह्मचिह्नं स्मरेत् सुधीः ।
उर्द्धं तु सीम्नि विरजां निःसीमां वरवर्णिनी ॥
वेदाङ्गस्वेदजनिततोयैः प्रस्राविताां शुभाम् ।
इमाश्च देवता ध्येया विरजायां यथाक्रमम् ॥
ततो निर्वाणपदवीं मुनीनामूर्द्धरेतसाम् ।
स्मरेत् परव्योम यत्र देवाः सनातनाः ॥
ततोऽनिरुद्धलोकं च प्रद्युम्नस्य यथाक्रमम् ।
संकर्षणस्य च तथा वासुदेवस्य च स्मरेत् ॥
पीयूषलतिकाकीर्णां नानासत्त्वनिषेविताम् ।
सर्वर्त्तु सुखदां स्वच्छां सर्वजन्तुसुखावहाम् ॥
नीलोत्पलदलश्यामां वायुना च निताः मुहुः ।
वृन्दावनपरागैस्तु वासितां कृष्णवल्लभाम् ॥
सीम्नि कुञ्जतटां गोपिक्रिडा-मण्डप मध्यमाम् ।
कालिन्दी सस्मरेद्धीमान् सुवर्णतटपङ्कजाम ॥
कालिन्दीजलसंसर्गिवायुना कम्पितं मुहुः ।
वृन्दावन कुसुमितं नानावृक्षविहङ्गमैः ॥
सस्मरेत् साधको धीमान् विलासैकनिकेतनम् ।
एकीभावो द्वयोर्यत्र वृक्षयोर्मध्यदेशतः ॥
तदधश्चिन्तयेद्देवि मणिमण्डपमुत्तमम् ।
त्रिलोकीसुख सर्वस्वं सुवन्त्रं केलिवल्लभम् ॥
तत्र सिंहासने रम्ये नानारत्नमये सुखे ।
सुमनोऽधिक-माधुर्यकोमले सुखसंस्तरे ॥
धर्मार्थ-काम-मोक्षाख्य चतुष्पादैर्विराजिते ।
ब्रह्मा-विष्णु-महेशानां शिरोभूषण-भूषिते ॥
तत्र प्रेमभराक्रान्तं किशोरं पीतवाससम् ।
कलया कुसुमश्यामं लावण्यैकनिकेतनम् ॥
लीलारस सुखाम्भोधि-संमग्नं सुखसागरम् ।
नवं न नीरदाभासं चन्द्रिकाञ्चितकुन्तलम् ॥

—विशुद्धात्मा व्यक्ति क्रमशः इस प्रकार ध्यान करेंगे—नाना कल्पलताओंसे परिपूर्ण सर्वव्यापी वैकुण्ठ है । उसके नीचे त्रिगुणोंकी साम्यावस्था रूपा प्रकृति है । उसके नीचे सत्यलोक है । प्रकृतिके ऊपर सीमा रहित विरजानदी है, जिसमें वेदाङ्ग-स्वेदका जल प्रवाहित होता है । विरजाके ऊपरी भागमें उर्द्धरेता मुनियोंका मुक्ति स्थान है । उसके ऊपरमें सनातन देवगणका विहार-स्थान परव्योम है । परव्यामके ऊपरमें क्रमशः अनिरुद्धि, प्रद्युम्न, सङ्कर्षण और वासुदेवके स्थानोंका स्मरण करना चाहिए । बुद्धिमान व्यक्ति यमुनाका भलीभाँति स्मरण करेंगे । उस यमुनामें अमृत-लताएँ व्याप्त हैं, उसमें नाना प्रकारके प्राणी रहते हैं, वह सब ऋतुओंमें सुखदायिनी होती है, सर्वप्रकारके प्राणियों के लिये परम सुखदायिनी है, नीलकमलकी भाँति श्यामवर्णकी है, तथा वह मृदुतर तरङ्गोंसे सुशोभित है । उसके सुन्दर तट पर सुन्दर-सुन्दर कुञ्ज हैं, जिनके मध्यभागमें व्रजसुन्दरियोंके लिये क्रीड़ा-मण्डप है । यमुनाके तीर पर सुवर्णभूमि है और जलमें सुवर्ण-कमल प्रस्फुटित होते हैं ।

तदनन्तर बुद्धिमान साधक विलासके एकमात्र निकेतन कुसुमित वृन्दावनका सम्यक रूपेण स्मरण करेंगे। वह वृन्दावन नित्य नूतन किसलय और पुष्पोंसे परिरंजित, नाना प्रकारके सौन्दर्यसे पूर्ण और सुखस्वरूप, स्वरूपानुभवके आनन्दसे भी अधिक सुखकी अभिव्यक्ति रूप शब्द-स्पर्श आदि पाँचों विषयोंसे परिपूर्ण, नाना प्रकारके विहंगमोंकी सुमधुर ध्वनिसे गुंजायमान, नाना प्रकारकी रत्न-लताओंसे सुशोभित, मत्त भ्रमरोंकी झंकारसे झंकृत, चिन्तामणियोंसे मण्डित, सभी ऋतुओंमें फलने-फूलने वाले फलों और फूलोंसे परिपूर्ण, नये-नये कोमल-कोमल पत्तों और सौरभ युक्त मंजरियोंसे परिपूर्ण है। उसमें कालिन्दीके जलको स्पर्श करती हुई शीतल-मृदु सुगन्धित वायु प्रवाहित होती है। उसमें नाना प्रकारके वृक्ष और पक्षीसमूह शोभित होते हैं। देवि! वृन्दावनके जिस स्थानमें दो कल्प-वृक्ष मध्यभागमें परस्पर मिल कर एकीभावको प्राप्त हुए हैं, उनके नीचे एक सुन्दर मणिमण्डपकी भावना करना। उस मणिमय मण्डपमें त्रिलोकीके सर्व-सुखास्पद केलिवल्लभ उत्तम यंत्र, नाना प्रकारके रत्नोंसे निर्मित सिंहासन, उस पर पुष्पसे भी अधिक कोमल एवं माधुर्यपूर्ण सुखमय गद्दी बिछी है। यह सिंहासन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चार कीलोंसे जुड़ा हुआ है। वह ब्रह्मा, विष्णु और महेशके मुकुटों द्वारा भूषित है। ऐसे सिंहासन पर प्रेमसे परिपूर्ण, पीताम्बर धारण किये हुए, कलया-कुसुम जैसे श्यामवर्णवाले लावण्यराशिके एकमात्र आश्रय-स्थल लीलारस-सुखसागरमें निमग्न, नव-नीरदके समान कान्ति विशिष्ट, मयूरपुच्छकी चूड़ासे शोभित-कुन्तलवाले किशोर कृष्णका ध्यान करना इत्यादि। इससे यह प्रमाणित हुआ कि श्रीकृष्ण लोक ही निखिल भगवल्लोकोंके ऊपरमें विराजमान हैं।

ब्रह्मसंहितामें भी श्रीकृष्णलोकका वर्णन इस प्रकार देखा जाता है—

सहस्र-पत्रकमलं गोकुलाख्यं महत्पदं।
तत्कर्णिकार-तद्धाम तदनन्तांशसम्भवम्॥
कर्णिकारं महद्यंत्रं षटकोणं वज्रकीलकम्।
षडङ्ग-षट्पदीस्थानं प्रकृत्या पुरुषेण च॥
प्रेमानन्द-महानन्द-रसेनावस्थितं तु यत्।
ज्योतीरूपेण मनुना कामबीजेन सङ्गतम्॥
तत्किञ्जल्कं तदंशानां तत्पत्राणि श्रियामपि।
चतुरस्रं तत्परितः श्वेतद्वीपाख्यमद्भुतम्॥
चतुरस्रं चतुर्मूर्तेश्चतुर्धाम चतुष्कृतम्।
चतुर्भिः पुरुषार्थैश्च चतुर्भिर्हेतुभिर्वृतम्॥
शूलैर्दशभिरानद्धमूर्ध्वाधो दिग्विदिक्षु च।
अष्टभिर्निधिभिर्जुष्टमष्टभिः सिद्धिभिस्तथा॥
मनुरूपैश्च दशभिर्दिक्पालैः परितोवृतम्।
श्यामैर्गौरैश्च रक्तैश्च शुक्लैश्च पार्षदर्षभैः॥
शोभित शक्तिभिस्ताभिरद्भुताभिः समन्ततः॥

—भगवान् श्रीकृष्णका गोकुल नामक धाम सहस्रदल कमलके समान है। उस कमलका कर्णिकार उनका धाम है। अनन्त देवके अंशसे गोकुलका निरन्तर आविर्भाव है। यह कर्णिकार हीरा की कीलोंसे शोभित षट्कोणोंवाला महद्यन्त्र स्वरूप

है। षट्कोणकी षटपदी श्रीमदष्टदशाक्षर मंत्रका स्थान है—जो प्रेमानन्दजनित महानन्दरसात्मक प्रकृति पुरुष द्वारा अधिष्ठित है तथा ज्योतिरूप काम-बीजका स्थान है। सहस्रदल कमलका किञ्जल्क (पराग या केशर)—श्रीकृष्णके स्वजाति गोपोंके तथा पत्र—गोपियोंके धाम हैं। गोकुलके चारों ओर श्वेतद्वीप, उसके चतुष्कोणोंमें वासुदेव आदि चतुर्व्यूह के धाम हैं। उसके दश ओर से दस कीलेंमें जड़ो हैं। आठों निधियों और आठों सिद्धियों द्वारा सर्वदा सेवित है। मंत्ररूपी इन्द्रादि दसदिग्पालोंके द्वारा परिरक्षित श्याम, गौर, रक्त और शुक्ल वर्णके पार्षद घिरे रहते हैं। तथा सर्व ओर से अत्यन्त आश्चर्यमयी शक्तियोंके द्वारा वह सब प्रकारसे सुशोभित हैं।

गोकुलका अर्थ है—गो, गोप और गोपियोंका निवास-स्थल। गोकुलका स्वरूप है—'अनन्तांश संभवम्' अर्थात् श्रीबलदेवके अंशसे गोकुलका नित्य आविर्भाव होता है। स्वयंमंत्र सेवित श्रीमद् अष्टदशा-क्षर महामंत्र राजके अनेक पाठ हैं, उनमें 'कर्णि-कार महद्यंत्र' इत्यादि श्लोकोंमें मुख्य पीठका वर्णन कर रहे हैं। सहस्र दल कमलके आकारवाले गोकुल की कर्णिका महद्यन्त्र अर्थात् उसका आकार सर्वत्र षट्कोण यंत्रके रूपमें चित्रित होता है। उसका षट्कोण अष्टदशाक्षर मन्त्रका स्थान है। प्रकृति मंत्रका स्वरूप कारण स्वरूप होनेके कारण श्रीकृष्ण ही इस मंत्रके प्रकृति हैं। श्रीकृष्ण ही इस मंत्रके देवता रूप पुरुष हैं अर्थात् जिससे मंत्रका आविर्भाव होता है, उसे मत्रकी प्रकृति कहते हैं तथा जो मंत्रके प्रतिपाद्य या उपास्य होते हैं, वे मंत्रके पुरुष कह-लाते हैं। प्रकृति और पुरुष दोनोंके विशेषण 'प्रेमा-नन्द रसेन'—प्रेमरूप जो आनन्द हैं, वही प्रेमानन्द महानन्द-रसराशि है अर्थात् प्रेमानन्दकी विशेष परिपक्वावस्था है। उस महानन्द-रस स्वरूपमें भी ज्योतिरूप अर्थात् स्वप्रकाश मंत्रके रूपमें और काम-बीजमें प्रकृति-पुरुष रूप श्रीकृष्ण अवस्थित हैं। उस कर्णिकारका किञ्जल्क अर्थात् "कर्णिकारसे संलग्न अभ्यन्तर वलय—तदंश सजातीय गोपोंका धाम है।

गोकुलके बाहरी चतुष्कोणात्मक स्थलका नाम श्वेतद्वीप है। क्योंकि इस स्थलको कहीं भी गोकुल नहीं कहा गया है। परन्तु चतुरस्रके भीतरी भागको वृन्दावन कहते हैं। उसका दूसरा नाम गोलोक भी है। गो एवं गोपोंके निवास स्थल-रूप सहस्र दल कमलका नाम श्रीगोकुल या वृन्दावन है और गोकुल के बहिर्मण्डल (चतुष्कोण स्थान) एवं भीतरी गोकुल—इन दोनोंको मिलाकर एक साथ उसका नाम गोलोक है। गोलोकके बाहरी चारोंकोणोंमें वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन चारों के धाम हैं। उक्त चारों कोण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चार प्रकारके पुरुषार्थों और उनकी प्राप्तिके साधनोंसे हैं। वे चारों ओर से मन्त्रात्मक इन्द्रादि दिक्पालों द्वारा परिवेष्टित हैं। श्याम, गौर, रक्त और शुक्ल, ये चार वर्णात्मक मूर्त्तिमान ऋक्, साम, यजु और अथर्व, इन चारों वेदोंके द्वारा सुशोभित हैं। श्रीमद्भागवतमें इसका उल्लेख है—'कृष्णश्च तत्र छन्दोभिः "स्तूयमानं सुविस्मिताः (१०।२८।१४) अर्थात् उस गोलोकमें मूर्तिमान वेदोंको कृष्णकी स्तुति करते देख कर गोपोंका बड़ा

ही विस्मय हुआ।" विमला, उत्कर्षणी, ज्ञाना, क्रिया, योग्या, प्रह्वी, सत्या, ईशाना और अनुग्रहा–इन शक्तियोंसे गोलोक सुशोभित है।

'रक्त-मांसका बना शरीर वहाँ गमन करनेमें सर्वथा असमर्थ है'—भागवतके (सत्यं ज्ञानंमनन्तं यद् ब्रह्म ज्योतिः सनातनः) (१०।२८।१३) श्लोक की टीकामें श्रीधरस्वामीने लिखा है—"देहादि-पिहितानां तद्दर्शनमशक्यम् देहादि व्यतिरिक्तं ब्रह्म-स्वरूपं दर्शयामास" अर्थात् देह आदि से आच्छादित जीव श्रीभगवद्धामका दर्शन करनेमें असमर्थ होता है—इसे बतलानेके लिये ही देहादि-व्यतिरिक्त ब्रह्म स्वरूपका दर्शन कराया।

अजामिलके वैकुण्ठ गमनके प्रसंगमें भी कहा गया है—ततो गुणेभ्य आत्मान वियुज्यात्मसमाधिना। युयुजे भगवद्धाम्नि ब्रह्मण्यनुभवात्मनि॥ (भा० ६।२।३६)—अर्थात् विष्णुदूतोंके संगके प्रभावसे अजामिलको संसारसे वैराग्य उत्पन्न होने पर वे घर-बार और आत्मीय-स्वजन सब कुछ छोड़ कर गंगाके तट पर उपस्थित हुए। वहाँ एक देव-मंदिरमें आसन लगाकर समाधिके लिये बैठ गए। तदनन्तर देह आदिके संगसे मनको हटा कर समाधि द्वारा अनुभवात्म भगवानके स्वरूपमें लगा दिया। पुनः "हित्वा कलेवरं तीर्थे गङ्गायां दर्शनादनु। सद्यः स्वरूपं जगृहे भगवत्पार्श्ववर्त्तिनाम॥" विष्णु के पार्षद-महापुरुषोंका दर्शन करनेके पश्चात् उन्होंने गंगामें देह त्याग कर उसी क्षण भगवत्पार्षद-शरीर को प्राप्त किया। पश्चात् 'साकं विहायसा विप्रो महापुरुषकिङ्करैः। "हैमं विमानमारुह्य ययौ यत्र श्रियः पति॥" श्रीहरिके किङ्कर महापुरुषोंके साथ स्वर्ण-विमान पर चढ़कर श्रीनारायणके समीप गमन किये। वह स्थान ब्रह्मा आदि देवताओंके भी अगोचर है। "यां न निघ्नो वयं सर्वं पृच्छन्तोऽपि पितामहम्" श्लोक ही इसका प्रमाण है।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति भूदेव श्रौती महाराज

श्रीचैतन्य-शिक्षामृत

[गत संख्यासे आगे]

स्वानुभव

स्वानुभव ही शुद्धज्ञानका द्वितीय प्रकरण है। जीव द्वारा अपने स्वरूपकी अनुभूति प्राप्त करनेका नाम ही स्वानुभव है। जीवका स्वरूप क्या है? भिन्न-भिन्न प्रकृतिके वशीभूत व्यक्ति इस प्रश्नका उत्तर भिन्न-भिन्न प्रकारसे दिया करते हैं। नीति-विरुद्ध या अन्त्यज जीवनमें अवस्थित व्यक्तियोंका उत्तर इस प्रकारका होता है कि प्राकृत अणु-परमाणुओंके यथोचित संयोगसे मानव देह और देहमें स्थित यन्त्रसमूह उत्पन्न होते हैं तथा उन यंत्रोंके चलनेसे उसमें अनुभव और विभिन्न प्रकारके विचारयुक्त ज्ञान पैदा होता है। उस ज्ञान और

यंत्रोंसे युक्त मानव शरीर ही जीव है। मानव शरीर के छूट जाने पर अर्थात् उसके नष्ट हो जाने पर जीव नामका कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहता। इनके विचारसे पशुओंको जीव नहीं कहा जा सकता है।

जो लोग नैतिक जीवनमें अवस्थित होते हैं, उनका भी उत्तर पूर्वोक्त उत्तर जैसा ही होता है, केवल एक बात इनमें अधिक यह होती है कि जीव नीतिपरायण होते हैं। इनके विचारसे नीति-विरुद्ध कार्य और नीतिद्वारा ही पशु और मनुष्यका भेद स्थिर होता है। कल्पित सेश्वरवादी नैतिक व्यक्ति भी लगभग ऐसा ही कहते हैं, केवल अधिक-रूपमें यह कहते हैं कि जीवके सामाजिक कल्याणके लिये एक कल्पित ईश्वर-विश्वास रखकर उसके अधीन रहना उचित है। सच्चे ईश्वरवादी—नैतिक व्यक्तिका कहना है कि ईश्वरने माताके गर्भमें जीवको पैदा किया है। कर्त्तव्य-पालनके द्वारा स्वर्ग आदि लोकोंका भोग करनेमें जीवका अधिकार है। कुकर्मसे नरक मिलता है। जिस प्रकार जीव अपने जन्मसे पूर्वकी बातोंको नहीं जानता, उसी प्रकार वह परलोककी बातोंको भी स्पष्टरूपसे नहीं जान पाता। अतएव जीव और जड़का परस्पर क्या सम्बन्ध है, उसे वह समझ नहीं पाता। *

ब्रह्मज्ञान-परायण व्यक्तियोंका इस विषयमें ऐसा सिद्धान्त होता है कि 'जीव वास्तवमें ब्रह्म ही ही है। अविद्याग्रस्त होनेपर ब्रह्म ही जीव है। अविद्याका बन्धन दूर होने पर जीव ब्रह्म हो जाता है।'

उपरोक्त अस्फुट, असम्पूर्ण और दोषपूर्ण सिद्धान्तोंके द्वारा जीव अपने शुद्ध स्वरूपका बोध प्राप्त नहीं कर सकता। विशुद्ध ज्ञानका अवलम्बन करनेसे यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि जीव दुःखपूर्ण संसारका नित्यनिवासी नहीं है। जीवकी जो वर्त-मान देह है वह उसकी नित्य देह नहीं है। जीव चित् वस्तु है। भगवान् विभुचैतन्य हैं और जीव उनका अणुचैतन्य है। भगवान् सूर्य-स्थानीय हैं तो जीव किरण स्थानीय है। भगवान् पूर्ण सच्चिदा-नन्द हैं एवं जीव चिदानन्द-कण विशेष है। जड़ जगत् और जड़, भगवानके उतने समीपवर्ती तत्त्व नहीं हैं, क्योंकि उनमें चिद्‌के विपरीत भाव परिल-क्षित होता है। किन्तु जीव स्वयं चिद्वस्तु है। इसलिये वह भगवानके अति समीपवर्ती सम्बन्धयुक्त तत्त्व है। जैसे भगवानका एक स्वरूप विग्रह है,ठीक उसी प्रकार जीवकी भी एक नित्य चिद्देह होती है वही चिद्देह वैकुण्ठधाममें प्रकाशित रहती है। जड़-

* वेण उवाच-

बालिशा बत यूयं वै अधर्मे धर्ममानिनः। ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारं पतिमुपासते ॥

अवजानन्त्यमी मूढा नृपरूपिणमीश्वरम्। नानुविन्दन्ति ते भद्रमिह लोके परत्र च ॥

को यज्ञपुरुषो नाम तत्र वो भक्तिरीदृशी। भर्तृस्नेहविदुराणां यथा जारे कुयोषिताम् ॥

विष्णुर्विरञ्चो गिरीश इन्द्रवायुर्यमो रविः। पर्जन्यो धनदः सोमः क्षितिरग्निरपाम्पतिः ॥

एते चान्ये च विबुधाः प्रभवो वर शापयोः। देहे भवन्ति नृपतेः सर्वदेवमयो नृपः ॥

तस्मान्मां कर्मभिर्विप्रा यजध्वं गतमत्सराः। बलिञ्च मह्यं हरत मत्तोऽन्यः कोऽग्रभुक् पुमान् ॥ (भा. ४।१४)

जगतमें बद्ध होनेपर वह चिन्मय देह मायाद्वारा रचित आवरणोंसे ढकी रहती है। पहले आवरणको लिङ्ग आवरण या लिङ्ग शरीर कहते हैं+। मन, बुद्धि और अहङ्कार—ये लिंगजगतके तत्त्व हैं। यह लिङ्ग जगत् जड़ जगत्की अपेक्षा सूक्ष्म होता है। इसलिये लिङ्ग आवरण भी सूक्ष्म होता है। स्थूल जगतमें जो आत्मबुद्धि और स्थूल शरीरमें 'मैं' का अभिमान होता है, उसे ही अहंकार कहते हैं। जड़के साथ सम्बन्ध होनेसे पूर्व जीवकी जो चिद्देह थी, उस देहमें उसका जो आत्माभिमान था या है, वह सर्वथा उचित और स्वाभाविक है; परन्तु जड़ सम्बन्ध होनेपर जड़ीय वस्तुओंमें 'मैं' का अभिमान औपाधिक और अनुचित है। * इसीका दूसरा नाम अविद्या है। यह अहङ्कार ही जड़ और जीवके बीच में बन्धनका सूत्र है। जड़में स्थित होकर जीव जिस समय जड़में अभिनिवेश करते हैं, उस समय यह अहङ्कार कुछ स्थूल होकर चित्त कहलाता है। जब जड़ पदार्थोंके प्रति विचार वृत्तिको चलाता है, तब वही तत्त्व कुछ और भी स्थूल आकार धारण कर बुद्धि हो पड़ता है। तदनन्तर इन्द्रिय-शक्तिके द्वारा जब साक्षात्रूपमें जड़की आलोचना करता है, तब इसी तत्त्वको मन कहा जाता है। अहंकारसे लेकर मन तक जितने भी तत्त्व हैं, वे शुद्ध जीव-निष्ठ नहीं हैं, अथच वे जड़ भी नहीं हैं। इसीलिये उन सबको लिङ्ग कहा जाता है। शुद्धावस्थामें जीवकी जो चिद् देह, उनका जो चित्कार्य और चिदनुशीलन होता है, उन सबका कुछ आंशिक लक्षण लिंग शरीरमें लक्षित होनेके कारण मध्यवर्ती तत्त्वको लिङ्ग कहते हैं। लिङ्ग शरीरद्वारा आच्छादित जीवके चित्शरीरमें जो मैं और मेराका भाव था, वह जड़ संगसे अत्यन्त सीमित होकर लिङ्गशरीरमें युक्त हो जाता है और चिद् शरीरवाला यथार्थ 'मैं और मेरा' का शुद्ध अभिमान क्रमशः लुप्तप्राय और विस्मृत होने लग जाता है। पुनः लिङ्ग-शरीरमें आत्मबुद्धि उदित होने पर तथा इस लिङ्ग शरीरका जड़ शरीरके साथ साक्षात् सम्बन्ध होनेके कारण जड़ शरीरमें ही आत्मबुद्धि (मैं का अभिमान) आरोपित हो जाता है। इस अवस्थामें शुद्ध जीवका अपने चित् शरीरमें जो कृष्णदासका अभिमान था, वह रूपान्तरित होकर विषयदास रूप अभिमान उदित हो पड़ता है। यह जीवकी पूर्णरूपेण मायाबद्धता है।

जीवकी चिद् देहका प्रथम आवरण लिङ्गदेह है और द्वितीय आवरण स्थूल देह है। स्थूल शरीर जो कुछ कर्म करता है, लिङ्गशरीर उन कर्मोंके फलको अपने साथ लेकर दूसरे शरीरको प्राप्त करता है। इस प्रकार एक स्थूल शरीरको छोड़कर दूसरे स्थूलको ग्रहण करता हुआ बद्धजीव एक ऐसे कर्म-चक्रमें फँस जाता है कि उस कर्मचक्रसे निकलना बड़ा कठिन हो पड़ता है।

कर्म अनादि कैसे

तत्त्वज्ञ पुरुष कर्मको अनादि किन्तु अन्तयुक्त तत्त्व मानते हैं। जो कर्म जड़ जगतको छोड़कर

+ यावल्लिङ्गान्वितो ह्यात्मा तावत् कर्मनिबन्धनम्। ततो विपर्ययः क्लेशो मायायोगानुवर्त्तते ॥ (भा. ७।२)

*वितथोऽभिनिवेशोऽयं यद्गुणेष्वर्थदृग्वचः। यथा मनोरथः स्वप्नः सार्वेन्द्रियकं मृषा ॥ (भा. ७।२)

अन्यत्र नहीं है, वह जीवकी मुक्ति होने पर नष्ट हो जाता है--ऐसा सभी तत्त्ववादियोंका मत है। परन्तु कर्म अनादि कैसे है--इस विषयको अधिकांश लोग स्पष्टरूपसे समझ नहीं पाते हैं। चित्‌कालके प्रति-फलन रूपमें जड़ीयकाल कर्मके व्यवहारोपयोगी एक जड़द्रव्य है। जीव वैकुण्ठमें चित्‌कालका अवलम्बन करते हैं। वैकुण्ठमें भूत और भविष्य कालका अस्तित्व नहीं है। वहाँ केवल वर्तमान ही होता है। जड़बद्ध होनेपर जीव जड़ीयकालमें प्रवेश कर भूत-भविष्य और वर्त्तमान रूप त्रिकालके अन्तर्गत सुख दुःख भोग करता है। जड़काल चित्‌कालसे निकलने और चित्‌काल अनादि होनेके कारण जीवके जड़ीयकर्मका आदि जो भगवद् विमुखता है, वह जड़कालके पूर्वसे ही चली आ रही है। अतएव जड़कालके सम्बन्धमें तटस्थ विचारसे कर्मका मूल जड़कालसे पूर्वका होनेसे कर्मको अनादि कहा गया है। यह स्पष्टरूपसे कहा जा सकता है कि कर्म जड़कालके प्रारम्भसे पूर्वसे चलते आ रहनेके कारण अनादि तो है, फिर भी जड़कालके मध्य ही उसका अन्त लक्षित होनेसे कर्मको विनाशी कहना युक्ति विरुद्ध नहीं है। जड़कालके भीतर कर्मका आदि तो नहीं है, परन्तु अन्त है।

उक्त विवेचनसे यह सिद्धान्तित होता है कि जीव दो प्रकारके हैं—मुक्त और बद्ध। मुक्तजीव भी ऐश्वर्यमय और माधुर्यमय स्वभावके भेदसे दो प्रकारके होते है। बद्धजीव पाँच प्रकारके होते हैं—(१) पूर्ण विकसित चेतन, (२) विकसित चेतन, (३) मुकुलित चेतन, (४) संकुचित चेतन और (५) आच्छादित चेतन।

दो प्रकारके मुक्तजीव

सर्व प्रथम मुक्तजीवके सम्बन्धमें विचार हो। नित्यमुक्त और बद्धमुक्त—ये दो प्रकारके मुक्तजीव हैं। जो जीव कभी भी जड़बद्ध नहीं हुए और निरन्तर वैकुण्ठमें ही वास करते हैं, वे मुक्तजीव हैं। निष्कपट और निस्वार्थरूपसे निरन्तर भगवत् सेवा करना ही उनका स्वभाव और क्रिया है। वे भगवानकी अनन्त लीलाओंमें उनके सहकारी होते हैं। जिस समय भगवान् अपनी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे संसारमें अवतीर्ण होते हैं, उस समय अनेकों मुक्तजीव भगवानकी इच्छासे भगवान्‌के साथ इस संसारमें आते हैं; परन्तु वे कभी भी मायाबद्ध नहीं होते। लीला समाप्त होनेपर भगवान्‌के साथ ही वे भी शुद्धधाममें गमन करते हैं। वे सभी जीव भगवानके नित्यसिद्ध परिकर हैं। वे संख्यामें अगणित है।

बद्धमुक्त जीवोंका आचरण सर्वप्रकारसे नित्य-सिद्धोंकी तरह ही होता है। बद्धावस्थासे मुक्त होनेके कारण ये जड़ जगत्‌के सारे विषयोंसे अवगत होते हैं। ये लोग समय-समयमें जड़ जगत्‌में उपस्थित होकर उपयुक्त जीवोंके प्रति कृपापूर्वक भगवद् आज्ञाको सुनाते हैं। ये इच्छानुसार अपनी-अपनी

सिद्ध देहसे विचरण करते हैं और पुनः शुद्धधाममें चले जाते हैं। ये जड़ जगतमें विचरण करनेपर भी पुनः बद्ध नहीं होते ❀।

चिन्मयधाममें हेयताका अभाव होता है

मुक्त जीवोंका आश्रय, अहङ्कार, चित्त, मन, इन्द्रियाँ और शरीर—सब कुछ चिन्मय होता है। उनमें संग करनेकी (मैथुन आदिकी) कामनाएँ नहीं रहतीं। वहाँ तो भगवत-सेवाकी ही एकमात्र अभिलाषा प्रबल होती है। वे विभिन्न प्रकारके सम्बन्धोंसे युक्त होकर विचित्र सेवाओंमें निमग्न रहते हैं। ऐश्वर्यभावयुक्त जीव दास्य-भाव तक लाभ करते हैं। माधुर्य भाववाले जीवसमूह सख्य, वात्सल्य और शृङ्गार सेवाको प्राप्त होते हैं। प्रत्येक मुक्तजीव अपने-अपने भावके अनुरूप स्वभाव अंगीकार करके कोई स्त्रीत्व और कोई पुरुषत्व भावमें स्थित रहता है। वहाँ पांचभौतिक जड़ शरीरकी भाँति स्त्री-व्यवहार, सन्तानोत्पत्ति और शारीरिक मल-मूत्र त्यागकी आवश्यकता नहीं होती। भगवत्प्रसादरूप चित्पदार्थोंके सेवनसे प्रीतिधर्मकी पुष्टि होती है। भगवतसेवाके लिये सखा और सखियोंमें मिलन तथा एकत्र वासादि निरन्तर होता है। वहाँ शोक, भय और मृत्यु नहीं हैं। वहाँ किसी भी प्रकारका अभाव नहीं है। वहाँका काल चिन्मय होता है। अर्थात् उस कालमें भूत और भविष्य नहीं होता। केवल वर्त्तमानकाल ही समस्त व्यापारोंका सम्पादन करता है+। वहाँ स्मृतिकी आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि सिद्धज्ञानगत स्मृतिकार्य वर्तमान कालमें बड़ी आसानीसे हो जाया करता है। "मैं नित्य कृष्णदास हूँ"—अपनेको ऐसा जानना ही शुद्ध अहङ्कार है। वहाँ पर आनन्द सर्वदा नित्य नूतन और अधिकतर घनीभूत होकर प्रकाशित रहता है। वहाँ तृप्ति नामक कोई अवस्था नहीं होती, लाभ और आनन्द निर्बाध और प्रचुररूपमें परिलक्षित होता है। भगवत् सेवोपयोगी रसके अनुसार वहाँ पर अनन्त प्रकोष्ठ नित्य विद्यमान हैं। रसोंमें शृङ्गाररस ही सर्वप्रधान है। उसमें भी सम्बन्धरूप शृङ्गारकी अपेक्षा कामरूप शृङ्गार बलवान होता है। उसी कामरूप शृङ्गाररसके पीठ स्वरूप नित्य वृन्दावन उन अनन्त प्रकोष्ठोंमें सबसे ऊपर विराजमान है। सभी रसोंमें भगवान स्वयं सेव्य होकर एक भाग और सेवक रूपमें दूसरा भाग ग्रहण कर

❀ श्रीनारदः—

अन्तर्बहिश्च लोकांस्त्रीन् पर्येम्यस्कन्दितव्रतः। देवदत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषिताम् ॥

मूर्च्छयित्वा हरिकथां गायमानश्चराम्यहम्। अनुग्रहान्महाविष्णोरविघात गतिः क्वचित् ॥ (भा. १।६।३२-३३)

+ तस्मै स्वलोकं भगवान् सभाजितः सन्दर्शयामास परं न यत्परम्।

व्यपेतसंक्लेश विमोहसाध्वसं स्वदृष्ट वद्भिर्विबुधैरभिष्टुतम् ॥

प्रवर्त्तते यत्र रजस्तमस्तयोः सत्त्वं च मिश्रं न च कालविक्रमः।

न यत्र माया किमुतापरे हरेरनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः ॥ (भा २।९)

उस दूसरे भागवाले स्वरूपको तत्तत् रस-सेवियोंके लिये आदर्श स्थल बनाकर अचिन्त्यलीलाका विस्तार करते हैं। शृङ्गारमें श्रीमती राधिका, वात्सल्यमें श्रीनन्द-यशोदा, सख्यमें सुबल और दास्य में रक्तक उस-उस रसमें भगवानके सेवक-भाव विशेष हैं। इनमें केवलमात्र यह भेद है कि शृङ्गार रसमें जिस प्रकार श्रीमती राधिका साक्षात् भगवद्भाव-विशेष हैं, वहाँ दूसरे रसोंमें बलदेव ही एकमात्र साक्षात् - विभाग हैं, श्रीनन्द-यशोदा, सुबल और रक्तकको उन्हींका (श्रीबलदेवका) अङ्गव्यूह स्वरूप समझना चाहिए। प्रकट समयमें अचिन्त्य शक्तिके द्वारा प्रपंचमें अपने पीठ और अनुचरोंके साथ श्रीकृष्णचन्द्र विहार कर रहे हैं। उन सब विहार कार्योंमें भगवान, उनके अनुचर वर्ग, उनके रसोपकरण-समूह और उनका रसपीठ जो प्रापञ्चिक नेत्रोंसे दिखलायी पड़ते हैं, वे किसी भी सांसारिक विधिके अधीन नहीं हैं, प्रत्युत वे भगवान् की अचिन्त्यशक्तिके स्वाधीन कार्य विशेष हैं।

बद्धजीव

ऐसा कहा गया है कि बद्धजीव पाँच प्रकारके + हैं—(१) पूर्ण विकशित-चेतन, (२) विकशित-चेतन, (३) मुकुलित-चेतन, (४) संकुचित-चेतन, और (५) आच्छादित-चेतन।

इनमें पूर्णविकशित-चेतन, विकशित - चेतन और मुकुलित-चेतन श्रेणियोंमें स्थित बद्धजीवसमूह नर शरीर-युक्त होते हैं। संकुचित-चेतन श्रेणीवाले बद्धजीव—पशु-पक्षी, साँप आदि शरीरधारी होते हैं। आच्छादित-चेतन श्रेणीवाले बद्धजीव—वृक्ष और पत्थर आदि शरीरोंसे युक्त होते हैं। कृष्ण दास्य विस्मृत होनेके कारण ही जीवका अविद्या-बन्धन है। यह विस्मृति जितनी ही अधिक गाढ़ी होती है, चेतनविशिष्ट जीवकी जड़ दुःखावस्थाकी प्राप्ति भी उतनी ही अधिक गाढ़ी होती है। जहाँ चेतन धर्म आच्छादित हो पड़ता है, वह अवस्था अत्यन्त बहिर्मुख अवस्था है। केवल मात्र साधु-संग और उनकी चरणरजके अभिषेक द्वारा ही उक्त अवस्थासे उद्धार होता है। अहिल्या, यमलार्जुन और सप्तताल-विषयक पौराणिक उपाख्यानोंके अनुशीलन से यह विषय सहज ही समझा जा सकता है। उक्त तीनों उदाहरणोंमें भगवत्-संसर्ग ही साधु-संसर्ग या साधुसंग है। पूर्णप्रेमको प्राप्त हुए जीव अथवा भगवानके सिवा और किसीके भी संसर्गसे उस अवस्थासे उद्धार नहीं होता। जहाँ चेतन धर्म संकुचित होता है, वहाँ भी (नृगराज के गिरगिट योनिसे उद्धारमें) केवल भगवत-संस्पर्श ही एकमात्र कारण है। पूर्णप्रेमको प्राप्त हुए पुरुषगण अर्थात् नारद आदि भक्तों और सिद्ध जीवोंकी कृपासे ही संकुचित जीवोंका उद्धार होता है। (क्रमशः)

+ जीवाः श्रेष्ठा ह्यजीवानां ततः प्राणभृतः शुभे। ततः सचित्ताः प्रवरास्ततश्चेन्द्रियवृत्तयः ॥
तत्रापि स्पर्श वेदिभ्य प्रवरा रसवेदिनः। तेभ्यो गन्धविदः श्रेष्ठास्ततः शब्दविदो वराः ॥
रूपभेदविदस्तत्र ततश्चोभयतो दतः। तेषां बहुपदाः श्रेष्ठाश्चतुष्पादस्ततो द्विपात् ॥
ततो वर्णाश्च चत्वारस्तेषां ब्राह्मण उत्तमः। ब्राह्मणेष्वपि वेदज्ञो ह्यर्थज्ञोऽभ्यधिकस्ततः ॥
अर्थज्ञात् संशयच्छेत्ता ततः श्रेयान् स्वधर्मकृत्। मुक्तसङ्गस्ततो भूयान् दोग्धा धर्ममात्मनः ॥
तस्मान्मय्यर्पिताशेषक्रियार्थात्मा निरन्तरः। मय्यर्पितात्मनः पुंसो मयि संन्यस्तकर्मणः ॥
न पश्यामि परं भूतमकर्त्तुः समदर्शनात् ॥ (भा. ३।२९।२८-३३)

श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा और
श्रीश्रीगौर-जन्मोत्सव

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी श्रीनवद्वीप धामकी परिक्रमा और श्रीश्रीगौरजन्मोत्सव श्रीश्री-गौड़ीय वेदान्त समितिके द्वारा विराट रूपमें अनुष्ठित हुआ है। इस वर्ष लगभग ५००० यात्रियोंने धाम परिक्रमा की है। यह यात्री-संख्या पिछले वर्षोंकी यात्री-संख्यासे अधिक है। गत ६ चैत्र से १३ चैत्र तक सप्ताह काल व्यापी अनुष्ठान चलता रहा। इस वर्ष संकल्प-ग्रहणके दिन अत्यधिक आँधी और वर्षा होने पर भी श्रीश्रीनृसिंहदेवकी कृपासे परिक्रमा पूर्व-परिकल्पित नियमके अनुसार ही हुई। प्रति दिन यात्री दल श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठसे समितिके त्रिदण्डिचरणोंकी परिचालकतामें बहिर्गत होकर शामको पुन: वहीं लौट आता था। शामकी धर्मसभामें परमाराध्यतम श्रील आचार्यदेव और त्रिदण्डिचरणोंका उपदेश, प्रवचन तथा भागवत पाठ होता। संकीर्त्तन, पाठ, भाषणके अतिरिक्त यात्रियोंका दोनों शाम महाप्रसाद भोजन-दान, ठहरनेका स्थान, औषधि आदि की भी समितिकी ओरसे सुन्दर व्यवस्था थी।

धाम परिक्रमाके पश्चात् श्रीगौराविर्भावके उपलक्ष्यमें श्रीजगन्नाथमिश्रके आनन्दोत्सवके दिन सबेरे ८ बजेसे रात १० बजे तक निमंत्रित अनिमंत्रित सबको ही आकण्ठ महाप्रसाद वितरण किया गया। कितने हजार लोगोंने प्रसाद भोजन किया उसकी गणना सम्भव न हो सकी। दर्शकगण उस दृश्यको देख कर समिति की उदारताकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे।

त्रिदण्ड संन्यास और वेशाश्रय

इस वर्ष श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा महोत्सवके अवसर पर १४ चैत्रको परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुपादपद्मके निकट श्रीपाद श्रीहरि ब्रह्मचारीने त्रिदण्ड संन्यासवेश और डा० श्रीपाद अद्वैतदास ब्रजवासी तथा श्रीपाद गोविन्ददास ब्रह्मचारीने बाबाजी वेश ग्रहण किया है। वेश-ग्रहण करनेके पश्चात् उनका नाम क्रमश: त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त न्यासी महाराज, श्रीमद् अद्वैतदास बाबाजी महाराज तथा श्रीमद् गोविन्ददास बाबाजी महाराज हुआ है। श्रीश्रीआचार्य देवने श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी कृत "सत् क्रियासार दीपिका" नामक सात्त्वत स्मृति शास्त्रके अनुसार उनको उक्त वेश दिये। इन तीनों गुरु सेवकोंका विस्तृत जीवन-चरित्र अगली संख्यामें प्रकाशित करने की अभिलाषा है।

—निजस्व संवाददाता

———

प्रचार-प्रसंग

आसाम प्रदेशमें श्रीश्रील आचार्यदेव

आसाम प्रदेशीय वैष्णवोंके बार-बार अनुरोध करनेसे परमाराध्यतम श्रीश्रीआचार्यदेव गत २८ मई १९६७ को श्रीनवद्वीपधामसे यात्रा कर आसाम-प्रदेशमें शुभागमन किये हैं, उनके साथ त्रिदण्डि स्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति वेदान्त वामन महाराज, त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त उर्द्धमन्थी महाराज, श्रीपाद मुकुन्द गोपाल ब्रह्मचारी, श्रीपाद माधवदास ब्रह्मचारी (बड़े), श्रीदयाल हरि ब्रह्मचारी, श्रीसनत कुमार ब्रह्मचारी, श्रीराधा-माधव ब्रह्मचारी, श्रीमदन मोहन ब्रह्मचारी, श्रीहरिहर ब्रह्मचारी आदि संन्यासी और ब्रह्मचारी वृन्द हैं। आसाम प्रदेशके गोलोकगंज रेलवे स्टेशन पर पहुँचनेपर आसाम प्रदेशीय वैष्णवोंके विराट समुदायने तुमुल हरि संकीर्तन करते हुए पुष्प मालाओंसे स्वागत कर उनको श्रीगोलोक गंज गौड़ीय मठ में ले गये। दूसरे दिन स्थानीय बेसिक स्कूलमें एक विराट धर्म सभाका आयोजन हुआ, जिसमें श्रील आचार्यदेव और संन्यासीवृन्दने धर्म तत्त्वके सम्बन्धमें पाण्डित्यपूर्ण भाषण दिया।

अब वे गोलोकगंज, धुबड़ी, बासुगाँव, सपटग्राम, बंगाईगाँव आदि स्थानोंमें तुमुलरूपसे शुद्ध भक्ति धर्मका प्रचार कर रहे हैं।

शिलांग, शिलचर और त्रिपुराके विभिन्न स्थानोंमें शुद्धा-भक्तिका प्रचार

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्यतम प्रचारक तथा श्रीभागवत पत्रिकाके प्रचार सम्पादक त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त पर्यटक महाराज आसाम प्रदेशके शिलांग, शिलचर और त्रिपुरा राज्यके अन्तर्गत आगरतला आदि स्थानोंमें श्रीचैतन्यमहाप्रभु द्वारा आचरित-प्रचारित प्रेमधर्मका विराट रूपमें प्रचार कर रहे हैं। विभिन्न स्थानोंकी श्रद्धालु जनता उनसे विभिन्न स्थानोंमें धर्म तत्त्वके सम्बन्धमें भाषण और प्रवचनके लिये आग्रहपूर्वक निमंत्रित कर उनको ले जा रही है। सर्वत्र ही उनका स्वागत किया जा रहा है। उनके साथ श्रीनवीन कृष्णदास बाबाजी महाराज और कतिपय ब्रह्मचारी हैं।

पश्चिम बंगालमें

(क) समितिके विशेष प्रचारक तथा 'श्रीगौड़ीय पत्रिका' बंगला मासिक पत्र (समितिका मुखपत्र) के सम्पादक—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त वामन महाराज चौबीस परगना और मेदिनीपुरके विभिन्न स्थलोंमें श्रीचैतन्य वाणीका प्रचार कर आजकल परमाराध्यतम श्रीश्रीआचार्यदेवके साथ आसाम प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें प्रचार कर रहे हैं।

(ख) त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिदण्डि महाराज तथा त्रिदण्डीस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त न्यासी महाराज अलग-अलग पार्टियोंमें पश्चिम बंगालके विभिन्न स्थानोंमें शुद्धाभक्तिका प्रचार कर रहे हैं।

———

छप गया ! छप गया !!

जैवधर्म

वर्षोंसे पाठक जिस ग्रन्थको बड़ी उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे, वह "जैवधर्म" (हिन्दी संस्करण) प्रकाशित हो गया है ।

यह ग्रन्थ वर्तमान वैष्णव जगतमें विशुद्ध भक्ति-भागीरथीकी पुनीत धाराको पुन: प्रबल वेगसे प्रवाहित करनेवाले, विभिन्न भाषाओंमें भगवद्भक्ति सम्बन्धी सैकड़ों ग्रन्थोंके रचयिता श्रीचैतन्य महाप्रभु के प्रिय पार्षद सप्तम गोस्वामी श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा बंगला भाषामें लिखित सुप्रसिद्ध ग्रन्थ—'जैवधर्म' का हिन्दी अनुवाद है । अनुवादक हैं- 'श्रीभागवत पत्रिका' (मासिक परमार्थिक पत्र) के सम्पादक – त्रिदण्डी स्वामी भक्ति वेदान्त नारायण महाराज ।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्तर्गत अखिल भारतीय गौड़ीय मठोंके संस्थापक आचार्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा संपादित होनेसे इस ग्रन्थकी उपादेयता और भी बढ़ गयी है ।

इसमें अखिल विश्वके निखिल जीवोंके सार्वत्रिक, सार्वकालिक तथा सार्वजनिक नित्य और सनातन धर्म—जैवधर्म (जीवका धर्म) का हृदयग्राही एवं साङ्गोपाङ्ग वर्णन है । इसमें वेद-वेदान्त, श्रीमद्भागवत आदि पुराण, ब्रह्मसूत्र, महाभारत, पञ्चरात्र एवं श्रीगौड़ीय-गोस्वामियोंके 'भक्तिरसामृत-सिन्धु, उज्ज्वलनीलमणि, षट्-सन्दर्भ, श्रीचैतन्यचरितामृत आदि सद्ग्रन्थोंका सार सहज सरल और रुचिकर भाषामें उपन्यास-प्रणालीमें सागरमें गागरकी भाँति भरा हुआ है ।

हिन्दी भाषामें श्रीगौड़ीय-वैष्णवधर्म और उसके सिद्धान्तोंका यह सर्वश्रेष्ठ प्रामाणिक ग्रन्थ है । हिन्दी साहित्यमें अब तक वैष्णव धर्मके, विशेषत: श्रीगौड़ीय वैष्णव धर्मके परमोच्च दार्शनिक सिद्धान्तों एवं सर्वोत्कृष्ट उपासना पद्धतिका बोध करनेवाले ऐसे अपूर्व सुन्दर और सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थका सर्वथा अभाव था । यह 'जैवधर्म' हिन्दी जगतको इस अभावकी पूर्त्ति कर दार्शनिक एवं धार्मिक जगतमें, विशेषत: वैष्णव जगतमें युगान्तर उपस्थित करेगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है ।

अत: पाठकोंसे हमारा विशेष अनुरोध है कि वे इस ग्रन्थरत्नका संग्रह कर अवश्य ही अध्ययन करें ।

सोलह पेजी २० × ३० आकारके ८०० पृष्ठोंकी सजिल्द पुस्तक । उत्तम कागज पर सुन्दर छपाई ।

मूल्य केवल दस रुपये ।

मँगानेका पता — श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ

पो०—मथुरा (उ. प्र.)